आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 4/सितंबर 2023
Received: 20/09/2023; Accepted: 21/09/2023; Published: 24/09/2023

लेख

वैश्वीकरण और हिन्दी की अस्मिता

- **प्रो.प्रतिभा मुदलियार**

प्रो.प्रतिभा मुदलियार, **वैश्वीकरण और हिन्दी की अस्मिता**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 4/सितंबर 2023,(440-445)

इक्कीसवीं सदी का दो दशक बीत चुके है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक से ही भूमंडलीकरण, बाजारवाद, सूचना-विस्फोट, तकनिकी क्रांति की चर्चा शुरु हो चुकी थी। वैश्वीकरण' उस विश्वव्यापी प्रवृत्ति का नाम है , जिसने पिछले कुछ वर्षों से पूरी दुनिया के जनजीवन को प्रभावित किया है और एक खास दिशा में मोड़ा है । भूमंडलीकरण , जगतीकरण, उदारीकरण , आर्थिक सुधार , नई आर्थिक नीति आदि इसके कई नाम हैं।आज इसकी आंच सब महसूस कर रहे हैं और यह पूरी दुनिया में चर्चा , बहस , विवादों तथा संघर्षों का केन्द्र बन चुकी है । वैश्वीकरण की यह प्रवृत्ति इतनी व्यापक है और इतनी ज्यादा हावी हो चुकी है कि कई लोग यह कहने लगे हैं कि अब वापस पीछे जाना संभव नहीं है और वैश्वीकरण का कोई विकल्प नहीं है (There is no alternative या TINA) तथा वैश्वीकरण की व्यवस्था को ही ज्यादा बेहतर , ज्यादा मानवीय बनाया जाए ।

भूमंडलीकरण शब्द का 1944 में प्रयोग किया गया था। पश्चिमि अर्थ शास्त्रियोंने इसको लगभग 1981 में लागु करना शुरू किया। थेडोरो लेविट ने पहलीबार 1983 में हार्वर्ड बिजिनेस रिव्युव में बाज़ार का वैश्वीकरण इस नाम से एक लेख लिखा तब से इस शब्द का प्रयोग विशेष कर अर्थ और समाज के परिप्रेक्ष्य में किया जाने लगा।

अंग्रेजी के Globalization शब्द के लिए हिन्दी में इन्हीं दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है। विश्वकोश में वैश्वीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है। **Globalization** is an umbrella term for a complex series of economic political changes seen as increasing interdependence, integration and interaction between people and companies in disparate locations. पर अब भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण में अन्तर किया जा रहा है। कहा जा रहा है, भूमंडलीकरण में अमरीकी सत्ता का दबदबा था, जबकि वैश्वीकरण में छोटे देशों के छोटे बाजार को भी स्पेस मिलना संभव था।

भूमंडलीकरण की अवधारणा भारत में सन् 1972 में आयी और तबसे भारतीय समाज और अर्थ व्यवस्था में परिवर्तन का जैसा सैलाब ही आ गया। वर्तमान में वैश्वीकरण की चर्चा लगभग हर क्षेत्र में होने लगी है। वास्तव में वैश्वीकरण की संकल्पना और अवधारणा के केन्द्र में अर्थ है। मैं यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि भारत के प्राचीन दर्शन में आनेवाली वसुधैव कुटुंबकं और 21 वीं सदी में प्रचलित वैश्वीकरण यह दोनों परिकल्पनाएँ बिलकूल भिन्न हैं। वसुधैव कुटुंबकम के पार्श्व में विश्व के कल्याणकारी दर्शन की संकल्पना कार्यरत है। जबकि वैश्वीकरण में विश्वव्यापार का संगठन है जिसका मानवीय कल्याणकारी भावना से कोई लेना देना नहीं है। वैश्वीकरण में भौतिकता, समृद्धि की अंधी दौड़ में उदात्तता का कोई भाव नहीं है। वैश्वीकरण से भौतिक जगत की दुरियाँ मिट रही हैं इसलिए विश्व एक ग्राम बन रहा है। वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास, कंप्युटर, फेक्स, इ-मेल , इंटरनेट आदि ने हमारी सोच और विचार के मानदंड ही बदल दिये हैं। इस दुनिया में वह व्यक्ति पिछड़ा हुआ है जिसके पास इन चीजों की उपयोगिता के ज्ञान का अभाव है।

डा. ब्रह्मस्वरूप शर्मा बड़ी सटीकता से कहते हैं कि भिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं की समग्रता में वैश्वीकरण का प्रस्फुटित जीवन- मुल्य एक ऐसी अवधारणा है जो भिन्नताओं में समानता का अन्वेषण कर मानवहित का संरक्षण करती है। यद्यपि इसमें व्यक्ति के सामाजिक जीवन के सभी पक्ष समाविष्ट है। तथापि इस समस्त समावेश के केन्द्र में अर्थ है। विश्व व्यापार व्यवस्था इसका विशिष्ट आयाम है। ऐसी व्यवस्था में प्रबधंन कौशल, पटूता, दक्षता और विलक्षणता पर विशेष बल है। परिणामोन्मुखी वाणिज्यिक क्रियाएँ इसकी गति हैं। कंप्युटर क्रान्ति इसका उदघोष है।

यह बात सत्य ही है कि वैश्वीकरण अर्थ केन्द्रित है। इसलिए यह देखना आवश्यक हो जाता है कि विश्व की अर्थ व्यवस्था में भारतीय अर्थ व्यवस्था कहाँ बैठती है। विश्व के संदर्भ में जब हम भारतीय अर्थ व्यवस्था को देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भारत एक अर्थ-शक्ति के रूप में उभर रहा है। हमारी अर्थ व्यवस्था के आधार स्तम्थ, यहाँ की प्राकृतिक संपदा, स्वायत्त सेवा, उपभोक्ता बाज़ार, उदारीकृत आर्थिक नीति और परिवेश है, जिसने भारत के व्यापार-उद्योग और सेवा-संवर्धन को प्रोत्साहन दिया और उन्नयन भी किया।

इधर के दो तीन दशकों में भूमंडलीकरण, वैश्विकरण, सूचना क्रान्ति का विस्फोट तथा उसके परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषाओं की अस्मिता का प्रश्न उठाकर काफी विचार विमर्श हो रहा है। मैं इस बात से पुर्णरूप से सहमत हूँ कि जब वैश्विकरण या भूमंडलीकरण की बात होती हो, तब हमारी भाषा की शक्ति और अस्मिता का विचार विमर्श करना अत्यन्त आवश्यक है, कारण भाषा की अस्मिता हमारी निजता है। अब यह प्रश्न भी उठता है कि इस अर्थ व्यवस्था की होड़ में भाषा की क्या भूमिका है। असल में भाषा अभिव्यक्ति के साधन के अतिरिक्त कुछ नहीं है, शायद यह अत्यंत रेशनलिस्ट किस्म का नजरिया है। लेकिन मेरा मानना है कि भाषा एक औजार है। इसका इस्तेमाल करना चाहिये बेहतर तरीके से खुद को अभिव्यक्त करने के लिये। सुंदरता से, और सटीकता से. इसके अतिरिक्त भाषा का क्या प्रयोजन हो सकता है?

वैश्वीकरण के इस दौर में आर्थिक और प्राद्यौगिकी की उन्नति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज जब भारत आर्थिक - शक्ति के रूप में ऊभर रहा है तो अर्थ और प्रौद्यौगिकी के क्षेत्र में उसका उत्थान अत्यावश्यक है। आज तक भारत की पहचान समाज, संस्कृति और अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में होती रही है पर अब समय ने करवट ली है और सारा विश्व भारत की ओर एक उभरती आर्थिक शक्ति की नज़रों से देख रहा है। भारत का यह उत्थान अखिल भारतीय स्तर पर निश्चित रूप से किसी विदेशी भाषा के माध्यम से नहीं होगा।

दरअसल सामाजिक जीवन की इस सच्चाई के प्रति व्यक्ति का आग्रह जितना प्रबल हो रहा है भाषागत अस्मिता के प्रति भी वह उतना ही सचेत है। भौतिक जगत की सुख सुविधाएँ मनुष्य को जहाँ आकर्षित कर रही है वहीं विस्तृत जीवन, सांस्कृतिक धरोहर के प्रति उसे सतर्क करता स्वत्व सिद्धी के लिए प्रेरित कर रहा है। आज की तारीख में स्थानियता की अस्मिता को अनदेखा कर वैश्वीकरण के स्वप्न को साकर नहीं किया जा सकता। परिवर्तन की प्रक्रिया में जब कभी अस्मिता व्यथित होती है तब बड़ी कुशलता से उसे सहन भी किया जा सकता है। अस्मिता-संरक्षण की व्यग्रता भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया में ही गुंफित है।

लेकिन इसके साथ ही एक शंका भी उपस्थित होती है कि इस वैश्वीकरण की व्यापकता में कहीं किसी में आधिपत्य की भावना प्रबल हो जाय तो। और जहाँ तक भाषाओं की अस्मिता की बात है जो कि अभिव्यक्ति का साधन है, और अपनी निजताओं का आख्यान करती है। यहाँ निजता से मेरा आशय अपनी संस्कृति, परंपरा, इतिहास आदि से है। और भिन्न भिन्न समाज और संस्कृति की समाहिति उनकी भाषाओं द्वारा ही संभव है। और जिस क्षण भाषा की अस्मिता लूप्त होती है समाज की निजता भी लूप्त होती है। डॉ० धर्मवीर भारती जी ने एक जगह कहा हैं कि, आज हिन्दी का संकट यह नहीं है कि वह अविकसित भाषा है, यह नहीं है कि उसमें ज्ञान-विज्ञान की शब्दावली नहीं है, यह नहीं है कि उसके बोलने वालों की संख्या कम होती जाती है और यह नहीं है

कि विधान सभा में उसे उचित स्थान नहीं मिला हुआ है, उसका मूल संकट यह है कि हिन्दी भाषी जन में आज चरित्र-बल नहीं रह गया है।

मैंने यह कथन इसलिए उद्घृत किया क्योंकि मैं यह बताना चाहती हूँ कि एक ज़माना ऐसा था जब भारत वर्ष में हिन्दी भाषा के अस्तित्व पर प्रश्न उठाया गया कारण उस वक्त अंग्रेजी का जादु हमारे सिर पर चढकर बोल रहा था और हिन्दी पर काले बादल मंडरा रहे थे। लेकिन आज की तारीख में हम विश्व ग्राम की संकल्पना को जी रहे हैं वैश्वीकरण का अनुभव कर रहे हैं तब भाषागत संकट और भी विकट हो गया है और उसका विचार ज़रूरी है।

मुझे लगता है कि वैश्वीकरण अर्थ केन्द्रित क्यों न हो, भाषा की निजता की अनुपस्थिति में प्रभावी हो ही नहीं सकता। वैश्वीकरण की दौड़ में आज हर राष्ट्र प्रतिभागी है और अपनी भाषा, अस्मिता की निजता के साथ खड़ा है। और कोई भी राष्ट्र अपनी पहचान मिटाना नहीं चाहेगा।

वैश्विक अर्थव्यवस्था के विशाल बाजार के रूप में उभरे भारत की ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रूख किया था तब एक सौदागर के रूप में उसकी भाषा अंग्रेजी थी। लेकिन इस भाषा में ये विदेशी कंपनियाँ करोड़ों उपभोक्ताओं से संवाद बनाने में असफल रहीं। उसे जल्दी अहसास हो गया कि यहां अपने उत्पाद बेचने के लिए हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं को संवाद का माध्यम बनाना होगा। देर सवेर भारतीय कंपनियों को भी यह समझ में आ गया।

पर कैसी विडंबना है कि एक ओर विदेशी कंपनियाँ अंग्रेजी का मोह त्याग कर उपभोक्ताओं से सीधे उन्हीं की भाषा में जुड़ रही हैं। वहीं भारत की शासन व्यवस्था अंग्रेजी के मकड़जाल में फँसी है। बाबू से लेकर नौकरशाह तक इस बंद सांकल को नहीं खोलना चाहते। और तो और लोक की भाषा में वोट मांग कर संसद की चौखट तक पहुंचने वाले कई नेता भी हिंदी में बोलने से कतराते हैं।

हमारे सामने चीन, रूस, दक्षिण कोरिया और जापान सबसे बड़े उदाहरण है जिन्होंने वैश्विक उदारीकरण की आंधी में भी भाषाई अस्मिता सहेज कर रखी और अपनी जुबान पर विदेशी रंग नहीं चढ़ने दिया। जर्मनी, फ्रांस और इटली को ही लें, वे भी एक राज्य और एक भाषा के सिद्धांत पर अमल करते हैं। अब अगर दक्षिण कोरिया का ही उदारहण लिया जाय तो इस वैश्वीकरण की दौड़ में यह छोटा सा राष्ट्र आर्थिक रूप से पूर्णतः विकसित है और अपनी निजता के साथ सुरक्षित भी है। इस देश का हर कार्य़ कोरियाई भाषा में होता है। और यह देश भारत की ओर एक बाज़ार के रूप में देखता है और उपभोक्ता तक पहूँचने के लिए हिन्दी का माध्यम अपनाना चाहता है। तुर्की जब आजाद हुआ तो एक हफ्ते में वह विदेशी भाषा के चंगुल से मुक्त हो गया था। मगर हम आजादी के छह दशक बाद भी अपनी भाषाई निजता को समझ नहीं पा रहें हैं।

भारत दुनियाभर में के उत्पाद निर्माताओं के लिए एक बड़ा खरीदार और उपभोक्ता बाज़ार है। यह उत्पाद वस्तु से लेकर विचार तक हो सकता है। यही कारण है कि आज वैश्वीकरण की भाषा का प्रसार हो रहा है। बहुदेशिय कम्पनियों को इस विशाल देश में अपने उत्पादों को बेचने की तगड़ी संभावना दीख रही है। हालाँकि इन बहुदेशिय कंपनियों को भारत की भाषाओं में कोई रूचि ना भी हो तो भी बाज़ार की शक्ति द्वारा इन कंपनियों का भविष्य इन भाषाओं पर ही टिका है, इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसे में वे अपने विज्ञापन हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओँ में देकर कामयाबी हासिल कर रही हैं। क्योंकि वे अच्छि तरह से जानती हैं कि भारत का उपभोक्ता वर्ग महानगरों से निकलकर शहरों, कस्बों और गांवों में फैलता जा रहा है औऱ उनकी भाषाओं का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। इससे विज्ञापनों का विकास होता जा रहा है। हिन्दी का स्वरूप क्या है। कैसा है। यह एक अलग प्रश्न है। पर इसके बावजूद यह सच है कि इसी माध्यम के सहारे हिन्दी वैश्विक विस्तार के नए आयाम छू रही है। अब हिंदी बा़जार की भाषा होने लगी। विज्ञापनों की भाषा के रूप में सामने आनेवाली हिन्दी भले ही शुद्धतावादियों को न जचे पर युवा वर्ग ने इसे देश भर में अपनाया है। इसे हिन्दी के संदर्भ में संचार माध्यम की सबसे बड़ी देन कहा जा सकता है।

वैश्वीकरण की बात संचार माध्यम की चर्चा के बिना अधुरी है। हिन्दी प्रचार प्रसार में संचार माध्यम की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। वैश्वीकरण से हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं पर इसका गलत-सही प्रभाव अवश्य हुआ। इसका अच्छा प्रभाव यह था कि, गत दो दशकों में संचार माध्यमों का जो विस्तार हुआ है उससे अखिल भारतीय स्तर पर खास कर दृश्य श्रव्य माध्यमों के द्वारा हिन्दी का विशेष विकास हुआ है। सन् 2000 में 825 फिल्मों का निर्माण हुआ, इनमें से हिन्दी की संख्या सबसे अधिक थी। और केवल हिन्दी फिल्मों का ही बाज़ार पूरे भारत भर में है। दर्शकों को भाषाय़ी सीमाएँ नहीं होती। इसी प्रकार सन् 2003 में 77 टी. वी. चैनेलों से कार्यक्रम प्रसारित होने लगे पर हिन्दी चैनेलों का दर्शक वर्ग पूरे भारत में फैला है और उसकी माँग भी ज्यादा है।

प्रिंट मिडिया (मिद्रक माध्यम) ने भी हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ाने में अपनी अहम भूमिका निभायी है। इंटरनेट पर हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज़ कर दी है। यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी किसी भी उच्च-भ्रू तकनीक के अनुकूल है। हिंदी की वेबसाइटों की संख्या जिस अनुपात में बढ़ रही है उसी अनुपात में इसके पाठकों की संख्या भी बढ़ रही है। लेकिन अभी हिंदी को नेट पर बहुत लंबा सफ़र तय करना है। प्राद्यौगिकी के क्षेत्र में हिन्दी का विकास काबिले तारीफ है। अंतरजाल पर तो हिन्दी के ठीकानों की तो जैसे बाढ़ सी आई है। पत्र-पत्रिकाएं, जर्नल्स, चिट्ठें, हिन्दी साहित्य, विनोद, आदि सब भरा पड़ा है। आप अगर हिन्दी लैंग्वेज रिसोर्स इस ठीकाने पर जायेंगे तो आपको हिन्दी से जुड़ी लगभग हर साईट देखने और पढ़ने मिल जायेंगी। इंटरनेट पर ऐसी वेबसाइटें बहुतायत में हैं जो हिंदी के ई-पाठक के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ज़रूरत है बस इन वेबसाइटों के बारे में जानकारी की। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में दुनिया बहुत तेज़ी से सिकुड़ती और पास आती जा रही है। वैश्विक ग्राम की अवधारणा के पीछे सूचना क्रांति की शक्ति है। इस प्रक्रिया में इंटरनेट की भूमिका असंदिग्ध है।

सूचना प्रोद्योगिकी हिन्दी के लिए सौगात लेकर आयी है।अब भाषाई दीवारें गिर गईं हैं। संप्रेषण अब प्रमुख हो गया है। वैश्वीकरण में सूचना प्रौद्यौगिकी की केन्द्रीय भूमिका ने हिन्दी भाषा को विश्व व्यापी विस्तार देकर उसे विश्व बाज़ार की भाषा बना दिया है। अंग्रेजी से निसंदेह विश्व में काम चलाया जा सकता है। पर्यटन किया जा सकता है। किन्तु किसी बाज़ार को समझने के लिए, संस्कृति को समझने के लिए और लंबे समय तक व्यापार में टिके रहने के लिए देश-विदेश की बहुजन की भाषा सीखना जरूरी हो जाता है, और यहाँ यही हुआ है। हिन्दी को वैश्वीकरण से कोई खतरा नहीं है। आज जरुरी इस बात की है कि हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति आदि को प्रचार प्रसाकित किया जाय, जिससे सुखद परिणाम ही मिलेंगे और निशंचित रूप से उसका वैश्विक स्वरूप सुदृढ़ होगा।

****